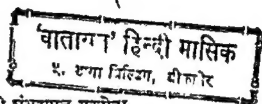
निवेदन के आंसू



श्री शंभूदयाल सकसेना



नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

प्रकाशक :
नवयुग ग्रन्थ कुटीर,
बीकानेर

प्रथम सस्करण :
सन् १९६३

मूल्य
पाँच रुपया

आवरण शिल्पी :
मोहनसिंह 'मधुप'

मुद्रक :
एजूकेशनल प्रेस,
बीकानेर

आत्मकथन

उपन्यास, नाटक, कहानी, एकांकी, कविता सबसे भिन्न इस रचना को पाठकों के हाथ मे देने की बात कभी सोची ही नहीं थी। यत्र तत्र अंकित इन भाव-कणों को एकत्र कर ग्रन्थ के रूप मे संकलित करने की प्रेरणा उस समय हुई जब किसी एक संग्रह के लिए गद्य गीतों की माग एक मित्र के द्वारा आई। उन्हें कुछेक अंश भेजे गये और उसी की प्रतिलिपि को इस संकलन के आदि पृष्ठ मानकर चयन कार्य आरम्भ कर दिया। इस प्रकार इसका कलेवर बढ़कर विस्तृत विशाल हो गया। यहां तक कि इस ग्रन्थ के आकार मे भी उसकी परिसमाप्ति असंभव दीखने लगी। इसे इसके प्रस्तुत रूप मे पूर्ण मानकर शेष को किसी आगामी प्रकाशन के लिए सुरक्षित रखकर ही संतोष करना पडा। यह है इस के जन्म का इतिहास।

इसी प्रकार इसके रचनाकाल को भी किसी एक समय की शृंखला मे विजड़ित नहीं किया जा सकता, न उसे तिथिक्रम के बंधन में ही बाँधा जा सकता है। अनुक्रम, व्यक्तिक्रम, विषयक्रम जैसा कोई क्रम भी इसके संकलन मे नहीं रक्खा गया है। इसके स्फुट विचारकणों और भाव तरंगों मे समग्र व्यक्तित्व की खोज किये बिना ही इसका पारायण करने के बाद कोई संदेश या निदेश पाठक को मिल सकेगा यह आशा और विश्वास होने पर ही इसके प्रकाशन का विचार स्थिर किया गया। किंचित रुचि के साथ इसका अवलोकन करनेवाले को किसी सीमा तक

संतोष और आनन्द अवश्य प्राप्त होगा, ऐसी आशा दुराशा न होनी चाहिए।

अन्तःसलिला की अविच्छिन्न धारा मे से जहां तहां से चूल्लू भर भर कर उलीचा गया यह रस अन्ततः उससे भिन्न नहीं है उस गंगा का ही यह गंगाजल है और उसके माहात्म्य, गौरव एवं पवित्रता से तदनुरूप ही ओतप्रोत है। लेखक के पास इस सम्बन्ध मे केवल इतना ही कथ्य है। इसके साहित्यिक मूल्यांकन का कार्य या तो समालोचना का है या लोकमानस का। यद्यपि कभी कभी समालोचना का वही निष्कर्ष नहीं होता जो लोकानुरंजन का। दोनों अभिमत जहां एक हो जाते हैं वहीं साहित्य की अमूल्य निधि के सृजन का सम्मान मिलता है। उस सौभाग्य की कामना तो सभी करते हैं पर नसीब होता है वह विरलों को ही।

बीकानेर
५-१२-६२

श. द. सक्सेना



निवेदन के आंसू

○ केवल एक ही अभिमान की वस्तु है मेरे पास,
वह है निश्छल प्यार ।

रूपातीत रहस्य-संकेत तक पहुंचने के लिए
शब्द ही एकमात्र सहारा है ।

निवेदन के आंसू

जीवन के पवित्र क्षणों में प्रकाश की स्वर्ण-रेख को सहेजकर मुझे
न्य हो लेने दो, स्वामिन् ! पर्जन्य की धूमिल छाया के लिए आकाश में
र्याप्त अवकाश है।



२

तुम्हारी कृपा-कोर का भिक्षुक वैभव की भीख से अपनी झोली नहीं भरेगा। उसे इसका अधिकार भी तो नहीं है।



३

मेरे अधरों पर मधु सूख रहा है मेरे मत्त मधुप ! अनुरोध की रेशमडोर थामकर चले आओ न,— बस अर्ध निमेष के लिए।



तुम्हारे प्रणय मंदिर मे अनास्था देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित हुए अभी कुछ ही पहर बीते हैं। उपासको की भीड से पूर्व एक बार इधर देख तो लो मेरे नाथ !



५

मेरी बरौनियो मे उलझकर स्वप्न कुम्हला गये हैं, उन्हे अपने चुम्बन की उष्ण समीर से लहलहा दो न मेरे प्राण !



वे मेरी अतृप्त अभिलाषाओ के स्वप्न द्रष्टा है। उनसे मेरी हृदय-वीणा का तार मिला हुआ है। युगो का अवकाश हमारे बीच मे खडा नही हो सकता।— सच जानना देश की दूरी की कहानी सर्वथा कल्पित है।



मेरी शिशु कल्पना मे यौवन के पख किसने लगा दिए ? मेरी अबोध भावना-हसिनी को वासती किरणो की दोला मे झुलानेवाला कौन है ?

इन प्रश्नो के उत्तर मे दक्षिण समीर की सिसकारिया भर सुन पड़ती हैं।



अन्तर की आंधी से आज बाहर के तूफान का मिलन हुआ है।
भूकंप से महाप्रलय का सौहार्द-प्रदर्शन कोई अनहोनी घटना तो नहीं है।



मेरे प्रसुप्त विराट् ! प्रतीची के प्रांगण में तुम्हें जगाने के लिए प्रभाती गाई जा रही है।

उठो, उठकर इस भव्य समारोह का समुचित सत्कार करो !



१०

यामिनी के पिछले पहर मे फूलो की सेज पर मन मसोसकर तुम अकेली पडी हो। सुमुखि ! यह हिमालय से पृथुल और वज्र से भी कठोर दुर्भाग्य तुम्हारे सुकुमार शरीर से इतनी ममता क्यो रखता है ?



११

यह कैसा संगीत है जो अणु-अणु मे और कण-कण मे लहरा रहा है? इससे ब्रह्माण्ड का रोमरोम झंकृत है। जीवन का तुमुल कोलाहल इसकी पहली 'सरगम' है। सृष्टि का यह बीज विद्युतधारा की भांति सर्वत्र व्याप्त है। तुम मानों या न मानों तुम्हारे कर्ण कुहर इससे अपरिचित नही हैं।



१२

अभिलापाओं की सेज पर तुम्हारा सौभाग्य नहीं जागा। तुमने जीवन पर्यन्त इस शिथिल कबरी का भार मात्र ढोया है। हृदय में साधों का संसार लिए तुम समन-समारोहों में सिसकती खड़ी रही हो। किसी ने तुम्हारी साज-सज्जा का समादर नहीं किया। तुम्हारे अधरों पर मधु सूखकर स्याह पड़ गया, तुम्हारे रेशमी केशों की स्निग्धता रूक्षता में परिणत हो गई। आर्ये! बोलो, तुम्हारे लिए क्या करूँ— मैं एक जराजीर्ण कंकाल!



किसके हृदय की वशी मे प्रेम की यह मधुर रागिनी अचानक बज उठी है, नीरव रजनी के निरभ्र आकाश-तले ?

ज्योत्स्ना शबनम की बूदो मे ढुलक रही है। सरिता के दोनो किनारे दो भुजाओं में नदी की कृश धारा को लपेट लेने के लिए आतुर हो रहे हैं। अपने शून्य कक्ष के झरोखे मे मैं तडप तडपकर रह जाती हूँ।



तुम्हें कुलीनता का शाल ओढकर चलने का अधिकार किसने दिया ? यह अधिकार तुम कब तक भोग सकोगे ?

ठहरो, एक क्षण सोचो । आगे बड़ा बीहड़ पथ है ।



१५

ग्रासुग्रों से गीले पथ पर चलकर ग्राने का ग्राग्रह कैसे करू ? मेरे हृदयमदिर के देवता ! तुम तब तक ग्रपने ग्रासन पर ही विराजमान रहो जब तक मैं सासो का स्वर्ण रथ तुम्हे लाने के लिए न भेज दू ।



उषा स्वर्ण किरणो के बन्दनवार लिए प्राची के द्वार का शृंगार कर रही है। लहरिया मलय समीर की कटि से लिपटकर एक अनाहूत नृत्य की सृष्टि मे रत होने वाली हैं। विश्व का यह विराट् व्यापार जिनके भव्य स्वागत समारोह का मंगलोपकरण बना है, हाय ! उन महिमामय सर्वेश्वर के चरणो में अर्पित करने के लिए आज मैं निष्कलुष पावन हृदय कहां से लाऊं ? जीवन-सध्या के झरोखे मे कातर-कपित कठ से मैं सिसक रही हूं।



अरे, ऐसा मत कहो कि उन्होंने अपना स्वर्णरथ मार्ग मे रोक रखा है और मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं साधनहीन अकिंचन, उनके चरणो तक मेरा मस्तक भला कैसे पहुँचेगा ?



१८

यह मेरे उनके बीच की बात है। इसके गोपन रहस्य को केवल हम दोनो ही जानते हैं।— और यह कि, यह सदा रहस्य ही बना रहेगा।



मेरा स्मृति मंदिर प्रतिमा विहीन है। अनूठे शिल्पविधान का स्वामी ऐसा शिल्पी कहा है जो मेरे स्वप्नों से उस मूर्ति को आकार प्रदान कर सके।



नि

२०

वे आकाश मे हैं और मैं धरती पर। कोई ऐसा आधार मिले जिसका सहारा लेकर मैं उन तक पहुँच सकूँ, उनके दर्शन से मन प्राण जुड़ा सकूँ।

धरती और आकाश का मिलन तथ्य जगत मे एक मिथ्या विचार है।



२२

गगन, तुम्हे विस्तार मिला, व्यापक विस्तार, न जिसका ओर न छोर। किन्तु तुम्हे उस केन्द्र का ज्ञान नही जिसमे तुम जैसे असख्य समाये हैं।— और वह बिन्दु, वह आलोकपु ज, उसके रूपदर्शन का पार नही। उसमे सब कुछ उद्भासित, सब कुछ स्पष्ट, रोम रोम रत्ती रत्ती !



२४

मेरे मनोरथो का रथ तुम्हारे पीछे पीछे गया। तुम्हारे मदिर के तोरण तक। किन्तु तुमने मुडकर न देखा और द्वार बद कर लिये।

तुम्हारा निदेश हो तो उसे लौटा ले जाऊँ अथवा अनन्तकाल तक यही खडे खडे प्रतीक्षा करने दूँ ?



हृदय के अन्तरग, तुम्हे अपने ऊपर विश्वास है, तुम निश्चयपूर्वक कह सकते हो कि उनके मन के किसी कोने मे मेरा स्थान नहीं है ?

शायद नही, यह सशय ही मेरी आशाओ के कठ को सीच रहा सोमरस है ।



२६

हृदय के अन्तरंग, तुम्हे अपने ऊपर विश्वास है, तुम निश्चयपूर्वक कह सकते हो कि उनके मन के किसी कोने मे मेरा स्थान नही है ?

शायद नही, यह सशय ही मेरी आशाओ के कठ को सीच रहा सोमरस है ।



हृदय के किस कोने मे तुम बसते हो ?

किस मार्ग से तुम बिना बुलाये मेरे सपनो मे आ जाते हो ?

मेरी आखें तुम्हे जागृति मे खोजती हैं, तब तुम सुषुप्ति मे छाये रहते हो।

तुम हो इतना तो आभास होता है पर कहा हो यह निश्चय नहीं हो पाता।

नही जानता उस पर्दे को कहा से उठाऊँ कि तुम सामने खड़े मिलो।

तुम्हारा थोड़ा सा सकेत इतना कर सकता है कि तुम्हारे लिए भटकने के प्रयत्न का अन्त हो जाये।



उसका स्नेहदान घूँघट के भीतर से, दृष्टिदान के रूप में, आ
अचानक मुझे मिल गया।

इतने बडे दान का अधिकारपत्र सौंपकर बिजली की कौंध की तर
बिना एहसान जताये वह चली गई, अपना कलस लिये बलखाती हुई पगडं
पर।

तब से हृदयवीणा के तार निरन्तर झनझना रहे हैं।

आज सात वर्ष उपरान्त भी वह झकार शान्त नही हुई है।



३२

'उसके पैरों में लाज का महावर लगा है। अकेली वह कैसे निकले ?'

'सखियों के झुण्ड के साथ आये' वह देना, 'उन कँगनो की झनकार मेरी पहचानी हुई है।'



वह मेरे द्वार पर आया है।
मैं उसे अपलक देखती रहना चाहती हूँ।
नये गीतो को मैंने उसके लिए नए स्वरो में गूंथा है।
जवाकुसुमों को मोतियो के साथ पिरोया है।
मैं जानती थी वह आयेगा।
उसे मैं अपने गीतों से एक बार विमुग्ध कर लूँ।
यह पुष्पहार उसे पहना पाऊँ, बस एक बार।
दक्षिण पवन की भांति मेरा हृदय चचल क्या हो रहा है ?
आषाढ की सन्ध्या सरीखी मेरी आखें स्वप्नाविष्ट किसलिए हैं ?
क्या वह बिना उपहार लिए चला जायेगा ?
आज जब वह स्वय चलकर मेरे द्वार पर आया है।



उनकी याद को मैं साथ लिए सो गई।

रात ने रात भर उसकी रखवाली की।

सपनो ने मधु सौरभ से उसे सरसाया।

उसका नशा मेरे अंग अंग मे छा रहा है।

उसका सिरहन भरा स्पर्श मेरे रोम रोम को पुलकित कर गया है।

कह देना, उसके प्रेम के वातावरण मे मेरा सौभाग्य जन जन के डाह का कारण बन रहा है।

●●

प्रेयसि, अपने आंसुओं मे मुझे मत बांधो।

मुझे वसन्त के उपवन का मुक्त पवन बना रहने दो।

नदी के एकांत कछार में निःस्वन संगीत मुझे बुला रहा है।

छन्दहीन कविता का उद्भ्रान्त प्रवाह मुझे साथ चलने का निमंत्रण दे रहा है।

प्रेयसि, आंसुओं की रेशमडोर से मुझे बंदी न बनाओ।



सखि, मैं कैसी अभागी हूं!

वह आता है तो मैं उससे सीधे नही बोलती।

वह हृदय मे दर्द लिए चला जाता है।

उसका मन जब आने को नही करता तो मेरे मन की शांति खो जाती है।

सब कुछ खोया खोया, लुटा लुटा सा लगता है।

मैं आशा मे आसू भरे बास के कुंज के पीछे जा बैठती हूं।

उसकी प्रतीक्षा मे दिन बीत जाता है, सध्या धूमिल पड जाती है, रात भीग जाती है।

मेरी उनींदी आख थक जाती हैं परन्तु कोई नही आता।

उसका हृदय पसीजता है, अपमान और उपेक्षा भूलकर वह फिर चला आता है।

उस समय बैरी मान फिर जाग उठता है।

मैं कथ कठोर व्यवहार से उसे खिझा देती हूं।

वह नही जानता मैं क्यो वैसा करती हूं।

मैं स्वय नही जानती मैं क्यों वैसा करती हूं।

सखि, मैं सचमुच अभागी हूं।





प्रियतम, तुम्हारे शिथिल आलिंगन में मैं छटपटा उठती हूँ।
मैं तो तुम्हारे उन्मत्त प्रेम की अधिकारिणी हूँ।
तुम किसी को कुछ दो, मुझे आपत्ति नहीं।
पर मुझे वह दो जो किसी को न दो।
मेरे अतुलनीय समर्पण का प्रतिदान तुम्हारे प्रेम के एकाधिकार
हक रखता है।

●●

तुम छत पर खड़ी वेणी को सुलझा रही हो।
तुम्हारा मान शिथिल पड़ गया हो तो थोड़ा सा संकेत पर्याप्त ह
तुम्हारा मान हमारे बीच में बाधा डालता रहे, यह भी कोई या
तुम्हारा हृदय जितना ही सुन्दर है मान उतना ही कुटिल है।
तुम छत पर खड़ी वेणी को सुलझा रही हो।
हमारे प्रेम को अपने मान के साथ क्यों उलझाये रहती हो, सु

●

तुम छत पर खड़ी वेणी को सुलझा रही हो।
तुम्हारा मान शिथिल पड गया हो तो थोड़ा सा संकेत पर्याप्त होगा।
तुम्हारा मान हमारे बीच मे बाधा डालता रहे, यह भी कोई बात है ?
तुम्हारा हृदय जितना ही सुन्दर है मान उतना ही कुटिल है।
तुम छत पर खड़ी वेणी को सुलझा रही हो।
हमारे प्रेम को अपने मान के साथ क्यो उलझाये रहती हो, सुमुखि ?



ओस बहा, ये तो रात के आसू हैं।

आखिर मरण-करों को उन्हें पोछने के लिए आना ही पड़ेगा।

तुम हो, जो रात के उपरान्त भी मेरे आसू पोछने की दरकार नहीं समझते।



सुमुखि, तुम्हारे मुख की भाषा मैं नही जानता हूँ।
किन्तु तुम्हारे मन की भाषा से मुझे अपरिचय नही है।
तुम वोलती हो वह मैं नही समझ पाता।
तुम चाहती हो वह सब मुझे ज्ञात है।
मेरी रानी, मेरी चहेती, तुम भले ही परदेशिन हो।
तुम्हारी आत्मा का संगीत मेरे अन्तर का उल्लास है।



४७

तुम्हारे इन चित्रों में कोई उन्मादक रमणीयता है।

मैं इन्हें देखता ही रह जाता हूँ।

तुम पास नहीं होती हो तो भी इनसे मेरा मन बहला रहता है।

यह तो मेरे मन की बात है।

इसमें तुम्हें रूठने का प्रयोजन नहीं।

तुम्हारे रंग में रँगी होने से ही इन आँखों में सौंदर्य का नशा छाया रहता है।

उसी के कारण मैं इन चित्रों के आकर्षण में खो जाता हूँ।

ये तुम्हारे द्रोह के नहीं प्रीति के उपकरण हैं।

देखो, तुम इन्हें फाड़ फेंकने की भूल कभी मत करना।



मैं जागी तो नीलोत्पल मेरी कबरी में गूँथा हुआ था। पीतोत्पल मेरे कंकण में बँधा था और अरुणोत्पल मेरी पायल में भून रहा था। मैं पूछती हूँ, मेरे छलिया, तुमने ऐसा क्यों किया ? सारी रात तुम यही खेल करते रहे और फिर उठकर चले गये। मुझ अकेली को सोती छोड़ तुम चुपचाप चले गये, कभी न आने के लिए। तुम्हारी लीला की ऐसी ऐसी कितनी ही स्मृतियाँ मुझे रुलाने के लिए मेरे पास रह गई हैं। यही वह निधि है जिसे सूनी घड़ियों में मैं सहेज सहेजकर धरती हूँ। तुमने किस शत्रुता का बदला लिया है मुझसे मैं नहीं जानती।



मेरा प्यार मेरा शत्रु बनकर जन्मा।

उसने मेरे तन-मन के आवरण को हटा दिया है।

मैं नंगी हो गई हूँ, बाहर से भी भीतर से भी।

कोई परिधान, कोई व्यवधान नही रह गया है।

अनावृत प्यार कितना बड़ा कलंक होता है, यह मैं आज जान पाई हूँ।

कुलवधुओं के शील-सौंदर्य का पथ मेरे लिए रुद्ध हो गया है।

मेरे लालित्य-लावण्य केवल उसके नहीं रहे जिसके प्रति मैं जन्म जन्मान्तर से समर्पित हूँ।

ये जन जन के कौतुक का प्रकरण बन गये हैं।

मैं आज अपनी भूल पर पछता रही हूँ।



एक बार तुम कह देतीं, 'न जाओ' तो मैं कभी न जाता।
मैं तो यही चाहता था कि तुम मुझे रोक लेतीं।
तुम भी चाहती थी कि मैं रुक जाऊँ।
तुम्हारी लाज ने किन्तु तुम्हारा मुँह न खुलने दिया।
विदा की वेला हम दोनों मूक बने रहे।
विछोह हमारे बीच मे शाश्वत दीवार बनकर खडा होगया।
रात बीतने पर चक्रवाक युगल का मिलन होता है।
हमारे विछोह की रात परन्तु जीवन-व्यापिनी है।
हम दोनो के थोडे से सकोच ने हमे सदा के लिए विलग किया है।



अपने मन के कमल-पत्र पर मेरे प्रेम रूपी ओसबिंदु को सँभालकर रख लो।

लोक-चर्चा की हवा के झोंकों की चिन्ता क्यों करती हो?

सूर्य की उत्तप्त किरणें उसे पोंछ ले जाने की तैयारी में हैं।

तुम तो चन्द्रकरों पर निर्भर करो, वे कभी उसे कुम्हलाने न देंगे।

उसे सजल-सरस रखने में उनका बहुत बड़ा प्रयोजन है।



५२

मेरा प्रेम तुम्हारे लिए है।
मेरा नेम भी तुम्हारे लिए है।
मेरा क्षेम भी तुम्हारे ही लिए है।
मेरे तो तुम एक ही देवता हो।
किसी और को मैं नहीं जानती।
तुम्हे पाने से ही मेरी तपस्या पूर्ण होगी।
हे अपूर्ण, तुम मेरे सर्वस्व का अर्घ्य स्वीकार करो।



५३

ताम्बूल ने तुम्हारे अधरों का मधु चखा है।

मेंहदी ने तुम्हारे कर-पल्लवों की ऊष्मा हरण की है।

महावर ने तुम्हारे पद-नखों की लाली चुराई है।

अनाघ्रात, अपीडित और अछूता क्या बचा है तुम्हारे पास, जो लेकर तुम उसे अर्पित करने जा रही हो? वह क्या इसी उच्छिष्ट का भिखारी है? तुम उससे छल करके किस पुण्य प्राप्ति की आशा रखती हो, कृशोदरि!



तुम किस विजन में छिपकर वंशी बजाते हो ?
मेरे मन के निकुंज में आकर बैठो न, मेरे प्राण।
मेरे हृदय का वृन्दावन कब से तुम्हारी राह देख रहा है।
जमुना किनारे, करीलवन के पार, तुम्हारी स्वर लहरी गूंज रही है।
क्षितिज से उतर कर सन्ध्या तमालों की छाया में कहीं खो गई है।
मंजरित कदम्बों की सुवास उसे तुम्हारे पास आने ही नहीं देती।



५५

तुम मेरे हृदय की ओट मे छिपे रहते हो।
मैं तुम्हारे वंशी-रव मे स्वर मिलाती हूँ।
तुम आँखमिचौनी मे मेरे मन की थाह लेते हो।
मैं तुम्हारे हृदय की धड़कन म बसती हूँ।
तुम मेर प्यार की परिधि मे समाय हो।
मैं तुम्हार प्रणय की सीमान्त रेखा से बँधी रहती हूँ।



दिन बुझ गया है, आकाश जग उठा है।

वनान्त की ओट में कोई मुस्कराती हुई किसी को बुला रही है।

नदी तट के कुंजकुटों में पक्षियों ने शांति को अपने पंखों में समेट लिया है।

आज की रात उसके जीवन की एकादशी का व्रत समाप्त होने को है।

अब और देर मत करो चलकर अपने हाथों से उसे पारण कराओ।

ऐ अवगुंठनवती, उस श्रान्त तापस की भाग्यरेखाएं तुम्हारे द्वारा ही लिखी जायेंगी।



५७

इन चन्द्र करों ने मेरे मन में आग लगा दी है।

कोयल के स्वर विष-बुझे बाणों जैसी मार कर रहे हैं।

अपनी विरहिणी को तुम अपने उन गानों का आनन्द समझा जाओ।

जिनकी मिलन-रात्रियों में 'मधुर एकान्त का रसदान' जैसा विषय था।

आकाश में दौड़ते मेघों की कमर में लिपटी सौदामिनी यही अनुरोध कर रही है।

मेरी वेणी का बंधन शिथिल हो गया है, और तुम अभी तक नहीं पहुँच पाये हो।



५८

मेरा सर्वस्व स्वप्न-धन भी मेरे पास नहीं रहने पाया ?

तुम्हारे सिर को अपने वक्ष से लगाये मैं तुमसे बातें कर रही थी।

मेरी आंखें बंद थी; मैं उन्मत्त भावों में विभोर थी।

तुम वासना की लाली अपांग में लिये शाश्वत मिलन का आश्वासन दे रहे थे, और कह रहे थे, 'तनिक आंखें तो मिलाओ।'

तुम्हारे अनुरोध को मानने से मेरे सपनों का संसार मुझसे छिन गया। मैं पलक मारते ही राजरानी से भिखारिणी हो गई।



पृथ्वी की उनींदी पलकों को, पेंगुरुओं की दोलती माया, विश्राम नहीं लेने देती है।

बादलों में छिपी स्वर्णिमता का स्वप्न भार हलका करने की भला किसको चिन्ता होगी।

ज्योत्स्ना स्नात रजनी के प्रांगण में हरसिंगार की पुष्पांजलि मूक प्रणय निवेदन है।

चलो, ऐसे समय हम घर से निकल पड़ें। बावरी, तेरी आंखों में चाव भरा है और उसका मन अधीर हो रहा है।

सिहरन भरी अंधेरी रात में देवता की राह तक कर यह तेरी प्रतीक्षा कब तक चलता रहेगा? यत्नपूर्वक गूँथी हुई मधुर-गान माला ले चलती है, भूल जाने न समागम के पलों किसी का डर बना रहता।



६०

शिप्रा के किनारे आदि कवि के स्वप्न चट्टानों के रूप में जम गये हैं। क्रौंच मिथुन का विछोह करानेवाला अहेरी उनकी ओट में कहीं शर संधान किये खड़ा है। तू उधर मत जा मृगेक्षणि, उसने कानों तक प्रत्यंचा खींच रखी है।

हृदय की गहन गुफा में मैंने तेरे लिए सुरक्षित शयनागार बना छोड़ा है। उसमें तू जगत की सीमाओं का बंधन तोड़कर आजा और तब तक विश्राम कर जब तक रात्रि का अन्धकार फीका नहीं पड़ जाता, जब तक हिमांशु की शीतल किरणों को भोर का प्रकाश बुहार नहीं ले जाता, जब तक ओसबिन्दुओं से उषा के कपोल विगलित नहीं हो जाते।



६१

तू मुझे बुलाये और मैं न आऊँ, ऐसा कभी हो सकता है ?

तेरी आग्रहमयी भुजाएँ फैली हों और मैं उनमें न बँध जाऊँ, ऐसा कभी हो सकता है ?

तेरे ओंठ खुले हों और मैं उन पर अनुराग का अमृत न छिड़कूँ, ऐसा कभी हो सकता है ?

मैं मेरे मन की नहीं जानती, मेरे मन में तो मान अभिमान कुछ नहीं है ।

वह तो कभी का मनवार आँसुओं के प्रवाह में बह चुका है ।



हृदय के नीलाम्बर तले केवल एक ही प्रतिमा विराजमान है, यह है तेरी।

असंख्यासंख्य रूपाकृतियों में से केवल तेरा ही चयन हुआ है, भाग्यशालिनी !

इस रहस्य-देश की राजधानी में मयूरसिंहासन की अधिकारिणी तुम्हीं को माना गया है। परम्परागत रत्नाभरणों का परित्याग करके केवल नैसर्गिक सुषमा के साथ तू आ जा।

कल्पना की तूलियां नूतन ढंग से सहस्रविध तेरा शृंगार करने को व्याकुल हैं।

हृदयमन्दिर की राजरानी, तू आ जा, एक पल का भी विलंब मत कर।



६३

रात के किस निभृत कोने में तुम बसते हो ?
किस मार्ग से तुम मेरे स्वप्नों में आ जाते हो ?
मेरी आंखें तुम्हें जागृति में खोजती हैं।
तुम सुषुप्ति में झांक रहे हो।
तुम हो इसका तो आभास होता है,
पर कहां हो यह निश्चय नहीं हो पाता।
नहीं जानती उस पर्दे को कहां से उठाऊँ कि तुम सामने खड़े मिलो।
और मेरी आंखों में आंखें डालकर पवित्र दृष्टि से मुझे ताकते रहो।



'मैं रुद्ध पथ हूं, मैं वर्जित प्रदेश हूं', कहकर अश्रुसिक्त आंखों से तू द्वार की ओट में जा खड़ी हुई और मैं अपना प्रेम निवेदन किये बिना ही चला आया।

दिन, मास, वर्ष बीत गये। आज एक युग के बाद उस दिन की याद मुझे फिर वहां खींच ले गई, जहां वसन्त समीरण वैसा ही सौरभ स्नात है। जहां निरभ्र नील आकाश का वितान वैसा ही तना है, जहां अमराइयों की छाया में पगडंडी सर्पगति से चलकर सरसों के खेतों में खो जाती है। जहां रंगबिरंगी तितलियों से फूलों का चुपचुप प्रमालाप चलता है। जहां नदी की धारा क्षीण किन्तु उसका वेग तीव्र हो गया है।

मैं वहीं जाकर ठिठक गया, जहां उस दिन तेरे रत्नजटित कंगनों की मीठी रुनझुन ने मुझे विह्वल कर दिया था। आज किन्तु किवाड़ों के पीछे किसी का कंठस्वर सुनाई नहीं पड़ा, न रेडियो का सुस्वर संगीत, तो भी मेरे कानों में एक युग पूर्व के तेरे शब्द उसी तरह गूंज रहे हैं। तेरी छलछलाई आंखों में तैरती उस दिन की विवशता मेरे प्राणों को मरोड़ रही है।



६५

हे अरूप, तेरा कोई अता-पता नहीं।

वे कहते हैं तू तारों में तुझको लिये है, पर बेचारे तारों को कुछ मालूम हो तो बतायें।

उनका अनुमान है कि तू मन-मानस के कमलवन में छिपा है, और मन तेरी खोज में कहाँ कहाँ नहीं भटक आया।

सब बताते हैं कि तेरा निवास हृदय के किसी निभृत कोने में है, परन्तु वहाँ किसी के लिए आना वर्जित है।

हे परमात्मन्, तू आकाश की नक्षत्र-माला में कहीं दर्शन दे सके तो तेरा याचक कृतकृत्य हो जाय।

तेरा स्वर्ण-मुकुट उषाकाल की किरणों में, पलाशपुष्प के पत्रों में, जगमगा उठे तो उसे तेरा मकान मिल जाय, और उसका उपालम्भ मिट जाय।



मैं उन्हे प्रतिदिन आते जाते देखता हूँ।

घडी की छोटी मोटी सुइयों की तरह वे समय को पहचानती हैं। मेरी आखो मे अपने रूप का अजन आजती हुई वे मेरी खिडकी के पास से निकल जाती हैं। जाते जाते एक औचक दृष्टि फेंकते जाना उनका स्वभाव हो गया है। मैं उस दृष्टि दान को शिरोधार्य करने के लिए पहले से ही तैयार रहता हूँ।

उन्ह मेरी कविता से कोई लगाव नही है। वे केवल मेरे मन के तारों को छेडने मे आनन्द पाती हैं। उनकी आखें मुस्कराती हैं। उनकी हसी सब कुछ कह देती है। इसके लिए मैं उन्हें उलाहना नही देता।

उन्हें मैं प्रतिदिन आते जाते देखता हूँ।

मेरी कविता का छद टूट जाता है। मेरी स्वर साधना भग हो जाती है। मैं उनके चचल पैरो की थिरकन मे किसी अनुरोध को खोजने लगता हूँ।

क्या वे किसी दिन अपने सकेतो का घू घट हटा देंगी, और अपने मन की गोपनीय अभिलाषा अपने कवि को जता देंगी ?

उस दिन मेरा काव्य अर्थ-भार से बोझिल हो जायगा। मैं उन्हे अपनी कविता के स्वर-छदो मे बाध लूँगा।



६७

मेरा कवि कभी बूढ़ा नहीं होता।

चाँद बूढ़ा हो जाता है, चाँदनी पीली पड़ जाती है, तारे मुरझा जाते हैं और किरणें थककर उन्हें बुहार ले जाती हैं, लेकिन मेरा कवि कभी बूढ़ा नहीं होता।

वसन्त बूढ़ा हो जाता है। किसलय सूख जाते हैं, फूल मुरझा जाते हैं, कलियाँ झड़ जाती हैं किन्तु मेरा कवि तरुण बना रहता है।

त्रिकाल तरुण मेरे कवि के गीत कंठ कंठ में मदिरा ढालता रहा है। कण कण में उसके काव्य का नशा छाया रहता है। उस अमर कवि की अजस्रप्रवाहिनी काव्यधारा के साथ मेरा अपनापा है। मैं उसके वाणी-व्यंजन के स्वाद को चख-चखकर अपना तारुण्य ताजा रखता हूँ।

मेरा कवि कभी बूढ़ा नहीं होगा। उसके गीत कभी बासी नहीं होंगे। मैं उस कवि की स्नेहमता हूँ।



आओ कवि, मैं तुम्हें अपनी पलकों में गूँथ लूँ।

आओ कवि, मैं तुम्हें अपनी पलकों में छिपा लूँ।

ओ प्रियवद, तुम इतने मीठे क्यों हो ?

तुम्हारी वाणी में मिठास, तुम्हारे गीतों में मिठास, तुम्हारे आँसुओं में भी मिठास !

तुम्हारे ललित लावण्य में मिसरी का सा स्वाद है।

कवि, तुम इतने मीठे क्यों हो कि सभी तुम्हें पाने के लिए तकरार करते हैं।

तुम बुरा न मानो तो मैं तुम्हें किसी ऐसी जगह छिपाऊँ जहां तुम सिर्फ मेरे ही रहो, मेरे अपने कवि !



मेरा काव्य चिर नूतन और चिर पुरातन है।

उसमें युग युग का मनन-विचार है।

मेरे पद-चिह्नों पर चले बिना कोई उस मन्दिर में कैसे पहुँच सकेगा ?

जीवन और सृष्टि का श्रेष्ठ और पुनीत जो कुछ हो सकता है वह इसमें संजोया हुआ है।

भाव-सौन्दर्य के, भाषा माधुर्य के, अक्षय कोश की उपलब्धि के लिए तुम्हें मेरे रास्ते आना ही पड़ेगा।

हर युग में काव्य-रसज्ञों से तुम्हारा साक्षात्कार होगा। नव जागरण के, चिर क्रान्ति के सन्देशवाहक बनने की प्रेरणा के लिए तुम्हें अपने इस कवि के मार्ग दर्शन की दरकार होगी। विशाल व्यास उसका काव्य चिर नूतन और चिर पुरातन है।



हे वरेण्य, तुम मेरा गर्व चूर्ण कर दो।
मेरा मस्तक तुम्हारे पाद-प्रहार के आगे झुक जाये।
मैं उसे तुम्हारे प्रेम का उपहार मानकर ग्रहण कर सकूं।
हे अभिराम, मैं तुम्हारी वक्रदृष्टि का अभिलाषी हूँ।
तुम मेरे दर्प को तीव्र व्यंग्य से छेद दो।
मैं तुम्हारा प्रसाद मान कर उसे गले लगा लूं
हे मनोज, मैं तुम्हारी ईषत् हास्यमयी मुस्कान से डरता हूँ।
उसके पीछे विषाद की करुण छाया मेरे मन में रुलाई लाती है।
मैं उसे लेकर क्या करूँगा; तुम्हारे ही चरणों में छोड़ कर चला जाऊंगा।



७१

पर, क्या मिलन के क्षण बीत गये ?

वियोग द्वार पर आकर खटखटा रहा है ।

कोई उन सजना को कि मैं विदाई का घुंघट देने की उतावली कर रही हूँ । मेरा वेश विन्यास बिखर गया है । मेरी लाज लज्जा सकुचा गई है । मैं उन्हें ठीक कर लूँ और अपने प्रिय से भेंट कर विदा ले लूँ ।

वियोग द्वार पर आकर खटखटा रहा है ।

मिलन के क्षण कभी के बीत गये हैं !



वन-मयूर, आज तुम मेरे मन्दिर की चूड़ा पर मत बोलो। मेरा मन-मयूर विषाद में आंसू बहाने लगता है।

मन्दिर की चूड़ा पर से तुम्हारा केकारव मेरे हृदय में भूली याद जगा देता है।

मेरे सिंजित पग तुम्हारे नृत्य के साथ थिरक उठते थे। मैं प्रिय की बांहों में समा जाती थी। वे औचक मिलन कराने के लिए तुम्हारी प्रशंसा करते थे। मैं लज्जा से प्रदोषवेला के रंग में रंग जाती थी।

आज तुम मेरे मन्दिर की चूड़ा पर बोलकर मेरे मन को मत दुखाओ।



७३

तूने मेरे हृदय-द्वार की सांकल क्यों खटखटाई ?

मैं तो सपने में लीन बराबर सो रही थी,

हठात् मेरी नींद खुल गई, मेरी सुध की नींद उड़ गई।

मैंने हड़बड़ा कर द्वार खोल दिया किन्तु तुझे वहां न पाया।

तूने मेरे हृदय-द्वार की सांकल क्यों बजाई ?

तुझे घड़ी दो घड़ी रुकना नहीं था तो मेरे मन की शान्ति को क्यों हर लिया ? तुझे दो बातें किए बिना ही चला जाना था तो बिनती-चिरौरी के साथ मेरे सपनों में क्यों आना ?

हवा का झोंका इतना ढीठ नहीं हो सकता जो इस प्रकार सांकल पीट कर चला जाय। मेरे हृदय द्वार की सांकल खड़खड़ाने वाला तेरे सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

बता, तूने मेरे हृदय द्वार की सांकल क्यों झनझनाई ?



जो मेरा है सो तेरा है। जो मेरा नहीं है उसके लिए तू व्याकुल मत हो। उसके लिए व्याकुल होने में कोई लाभ नहीं है।

मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा प्यार तेरे चरणों में समर्पित हैं। हाड-चाम के इस तन पर मेरा अधिकार नहीं है।

मणि-मुक्ता सब तेरे लिए है। शख-सीपी के लिए तू लोभ मत कर।

मेरी बात मान ले, मेरे आराध्य! मेरे सर्वस्व का नैवेद्य तू अनन्य भाव से ग्रहण कर।



तू कहे तो मैं उसे बता दूँ कि तूने मेरे कानों में क्या गुनगुनाया था।

दुखिया, मेरे ऐसे ही दुःख हैं। अब तू मुझे क्यों रोक रहा है? मेरी चिरौरी करने से क्या होगा? मैं तेरी बातें उसे बताये बिना न रहूँगी।

आषाढ़ की पहली फुहार ने सूखी दूब को हरा कर दिया है। बादलों के कानों से लगी विद्युत सारस पक्षियों के जोड़े को वर्षा का संदेश दे रही है।

तू कहे तो मैं उसे बता दूँ कि तूने मेरे कानों में क्या कहा है?

तू पछता रहा है कि तूने मेरे आगे अपना हृदय क्यों खोला?

अच्छा डर मत, मैं तेरी गोपनीयता का पर्दा नहीं उठाऊँगी। इसके बदले में मुझे वह देना होगा, जिसका तूने वचन दिया था।



कौतूहल भरे तेरे नयनों में अथाह रहस्य है। मैं उनमें डूबकर भी उसकी थाह नहीं पाता।

सुलोचने, क्या तू अपने नयनों की गहराई को वाणी नहीं दे सकती? शायद तेरा भी उस पर वश नहीं है।

सागर में मोती और सीपी दोनों ही तिरते हैं। इसका पता उसे तभी चलता है जब गोताखोर उन्हें निकालकर तट पर उछाल देता है।

कौतूहल भरे तेरे नयनों में अथाह रहस्य है। उसमें से मोती और सीपी का विवेक करना क्या सहज है?



पनघट और अमराई की इस निविड़ छाया में न जाने कितनी निष्ठा है। प्रातःकाल में इधर पायल बजी ही उधर आतुर हृदय चंचल हो उठते हैं। पनघट पर पैंजनों की मधुर झनकार से अमराई की परछाइयाँ ताकुल नृत्य करने लगती हैं। उसकी मधुर खिलखिलाहट से उधर देवालय और मन्दिर सर्वत्र मुखर हो उठते हैं।

दोपहर होते होते पनघट शान्त और सूना हो जाता है। उस समय अमराई भी थककर सो जाती है। जीवन के प्रभातकाल से दोनों का यह व्यापार निरन्तर चल रहा है।

आज अचानक उसमें व्याघात देखकर अनिष्ट की आशंका से दोनों का मन डोल उठा है। पनघट अमराई से पूछता है, अमराई पनघट से जिज्ञासा करती है, 'रात रात में बहू-बेटियों की यह दुनिया कहाँ चली गई?'

किन्तु कहीं से कोई समाधान नहीं आता।



७८

मुझे किसी अन्य के परिचय की आवश्यकता नही।

तेरा मेरा परिचय ही काफी है। तेरे मेरे प्रेम की कथा कौन सी क्षुद्र है? क्या कभी वह चुक पाई है? क्या कभी वह चुक पायेगी? काल के असीम आकाश मे शाश्वत नक्षत्रमालाओ की तरह वह व्याप्त है।

मैं तेरे-मेरे परिचय के बीच मे किसी को आने देना नही चाहता। यहा किसी और के लिए स्थान ही रहा है? हमारी छोटी सी दुनिया मे कोई समायेगा ही कैसे? तेरे मन मे यह विचार ही क्यो आया, मेरे भग्न कुटीर!



क्षितिज समीप किसी प्यारी स्मृति से घायल है!

आज यह जीवन के क्षणों में दुर्लभ हो गया है, फिर भी ऐसा लगता है जैसे यह तारों के साथ न डूबा हो बल्कि यहीं कहीं पीड़ामग्न हो।

पुरातन, कभी न लौटनेवाला, वातावरण वर्तमान के हृदय को अनुरागभरी आत्मीयता से बिलो रहा है। उससे कितनी देर में कैसा नवनीत निकलेगा यह देखने के लिए मन विस्फारित नेत्रों से क्षितिज के उस ओर झांक रहा है, जहां क्षितिज समीप किसी प्यारी स्मृति से घायल है!



मेरे मृत्यु-मुहूर्त को इतना मगलमय बनाने का प्रयोजन तो बता दे।

जन्म और जीवन को निरन्तर मिथ्या से अभिषिक्त करते रहकर मृत्यु को महिमा से मंडित करने में क्या आशय है, यह तेरे सिवा कोई नहीं जानता।

मेरे निकट मृत्यु, जन्म और जीवन का एक सा मूल्य रहा है। जो रोता ही आया हो, रोता ही रहा हो और रोता ही जाता हो उसे इस समारोह के प्रति कोई राग नहीं हो सकता, वत्स!

मैं अखण्ड शांति के रथ पर चढ़कर शेष यात्रा किया चाहता हूँ, तू अपने तमाम महोपकरण समेट ले।



८१

इस समय मेरे जीर्ण पंजर में कुछ भी तो नहीं है।

यौवन का ऐश्वर्य समाप्त हो चुका है।

गीत की चांदनी स्वरहीन हो गई है।

सपनों की मणिमाला छिन्न होकर बिखर चुकी है।

महत्त्वाकांक्षा की स्वर्णाभा अपनी दिव्य श्री खो बैठी है।

अब किस मंगल-किरण के लिए मैं तरस रही हूं ?

उसमें क्या सम्मोहन है ?

मेरे आशाहीन भविष्य की पलकों में किस मेघ-सन्देश की प्रतीक्षा है ?

अर्धरात्रि के सन्नाटे में, समुद्रफेन की भांति, हिमधवल पर्णों की मरमराहट व्यर्थ मेरा ध्यान बंटा रही है।



८२

तुम्हारे प्रति मेरे मन का लोभ तुम्हे दुर्लभ मानने को तैयार नही है। *मन प्राणों मे उत्कट आस्था जागरूक है कि तुम कहीं भी रहो, मेरे लिए* सहज लभ्य हो।

तुम कितने ही धीरे गाओ, मेरे कानों मे तुम्हारे गीत का स्वर पहुँच जाता है। उस दुर्लंघ्य दीवार को मेरे मन ने कभी नही माना है जो हम दोनो के बीच मे खड़ी बतायी जाती है।

हे निरुपम, उस असीम दूरी के आंचल मे तुम्हारा अस्तित्व क्या केवल कल्पनाजन्य है? अब तक मेरा विश्वास क्या मरुमरीचिकाओं मे ही उलझा रहा है?



तुम, और तुम, मेरी कुटिया के द्वार पर अचानक कहाँ से आ गये ? कौन जानता था कि किसी पूर्व सूचना के बिना मेरे स्वप्नों का सुहाग लेकर तुम आ जाओगे ?

बंद द्वार के भीतर ही तुम्हारी पद-चाप की आहट से मेरा हृदय झनझना उठा। मुख उषाकाल की अरुणिमा से दीप्त हो गया। गुलाब की पंखुड़ियों सा मन महक उठा।

मैंने जल्दी जल्दी अर्घ्य में वेश जुटाया और अपने प्रवासी के सत्कार हेतु कुटिया का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तुमने अपने हाथ से मेरा अवगुंठन हटाया और लज्जा से कांपते, मेरे हाथों का अर्घ्य स्वीकार किया। किन्तु तुम्हारे मुख पर छाया संशय दूर न हुआ और मुझे धृष्टतापूर्वक फिर से अपना परिचय देना पड़ा।

मेरी विडम्बना की कथा से मेरा हृदय विगलित हो रहा है !



इन सप्तर्षियों को अर्घ्य देकर वे प्रदोषवेला के उपरान्त मेरे पाहुने हुये थे। इस आकाशगंगा को साक्षी मानकर उन्होंने मेरी पवित्रता पर स्पर्श का कुंकुम छिड़का था। तुम बताओ मैं किस भांति कलंकिनी हूँ ?

उनके निष्कलुप आलिंगन में बँध जाना ही पाप हो तो दूसरी बात है। हृदय में इतना आनन्दोल्लास क्या किसी पाप का परिणाम हो सकता है ? इसमें दुराव-छिपाव नहीं, इसमें भय-बाधा नहीं। यह तो मेरे जीवन का सबसे बड़ा सार्वजनिक समारोह रहा है। इसमें किसी तरह की दुर्गन्ध, किसी तरह की कालिमा नहीं है। मैं सौगन्द खाकर कह सकती हूँ। तुम मानों या न मानों; विश्वास करो या न करो। वे मेरे कृष्ण, मैं उनकी राधा !



तुम मेरे उनके परिचय की बात पूछते हो ?

मेरी उँगलियों में उनका स्पर्श ताजा है। मेरी हथेलियां उन्हें पहचानती हैं। इन कलाइयों, इन अंगड़ाइयों, से उनका गहरा परिचय है। मेरे अंग अंग, मेरे रोम रोम, को उनके शरीर की गरमाहट का ज्ञान है। मेरे स्वप्न उनकी रूपाकृति के कुशल चितेरे हैं।

इन आंखों में झांको, देखो, उनकी परछाईं के सिवा कुछ उनमें झलकता है ? फिर भी तुम मेरे उनके परिचय की जानकारी चाहते हो ?

वे सकुचाते आयें, चाहे निधड़क चले आयें, तुम उन्हें आने देना। उनके प्रवेश के लिए यहां किसी प्रकार के वीसा की दरकार नहीं है। कोई कानून कायदा उन पर लागू नहीं होता। उनकी वेणी में मन्दार के फूल और चंपे की कलियां हों चाहे न हों उन्हें आने देना। आकाश की भांति गहन मौन होंठों पर धरे आयें तो भी उन्हें मत रोकना। शरदेन्दु-सा उनका मुखड़ा, केशों में गूँथे फूलों की भांति, मुरझा गया हो तो भी, बिना रोकटोक के उन्हें चला आने देना।

इतने पर भी तुम मेरे उनके परिचय की बात पूछते हो ?



ये ग्रीष्म के दिन और पतझड की रात उन पर निछावर है जो समय असमय मेरे मन के झरोखे मे झाक झाक जाते हैं।

यौवन की आधी मे और बचपन की सौम्य ऋतु मे, अभावो की क्षतिपूर्ति के निमित्त उदारतापूर्वक सतत उत्सुक, अपने देवाधिदेव के चरणो म श्रद्धानमित मैं कुसुमित बसन्त-श्री की अजलि अर्पित करती हूं।



८७

मेरे गीतो की लय उनके स्तुतिगान से पवित्र हो चुकी है जिनका हिमाशु-शुभ्र कलेवर वर्षा-जल से निरतर अभिषिचित होता है।

विवसना देवागनाओ के रूप का अजन जिनके अपागो को स्निग्ध कर चुका है, मेरे ये सर्वस्वापहारी मेरी जिह्वा पर अपने हाथो से कविता के छन्द लिख गये हैं।



मेरी श्रावही वात सुनने के लिए व्यग्र मेरा सजन लौटकर ग्रायेगा कि नहीं ?

फागुन की चादनी रात स मैं पूछ रहा हूँ कि वह उसके उत्तरीय पर मेरे लिए सदश की कु कुम छिडक गया है कि नहीं ?

दूर्वा के श्यामल ग्रचल पर ग्रकित उसके पदचिह्न वताते है कि वह किसी हडबडी मे नदी-तट की ग्रोर नौका की खोज मे चला गया है।

मेरी ग्रनकही बात की रेशम-डोर से वँधा मेरा परदसी सजन लौटकर ग्रायगा कि नही ?

एकादशी के व्रत ग्रौर ग्रमावस्या की कृच्छ्र उपासना से कृश मेरा शरीर उसके गन्धोच्छ्वास के स्पर्श से सिहर रहा है।

मेघो के साथ उडकर उसे खोजने की मेरी शक्ति नि शेष हो चुकी है।

मेरी ग्रनकही बात का जादू उसे खीचकर लायगा कि नही ?



सहस्र मेगाटन बम का विस्फोट इस धराधाम को धूमिल कर देगा, उस समय कवि के छन्दों में जीवन-संगीत फूट पड़ेगा ।

सृष्टि का विधान ध्वंस और विनाश के हाथों में नहीं कवि के स्वर-छन्दों में सुरक्षित है ।

अनन्त सौर-मंडलों के ब्रह्माण्ड में कवि की वाणी का प्रसाद वितरित होता है । सुपर बमों की क्षुद्र दहन-लीला से वह निर्वीर्य नहीं होगा ।

जीवन की अटूट धारा में खंडविनाश की उल्काएं जलकर बुझ जायेंगी । उनकी रेडियम धर्मिता महाकाल के चक्र के साथ भ्रमित होती हुई जीवन-संगीत के महासमुद्र में लीन हो जायगी ।

कवि के शंखनाद में कला, दर्शन और विज्ञान की चरम उपलब्धियों का समन्वय होना है ।



हे परिवर्तन, तुम आशा में जागो और प्राणों में मुस्कराओ। तुम वियोग को मिलन के क्षणों में बदल जाने दो। आँसू को हँसी में, उदासी को चाँदनी में, धूल को फूल में खिल जाने दो। जब मेरे जीवन-नाटक के करुण दृश्य के बाद परदा उठे तो वासन्ती छटा के अरुणोदय का व्यापार चल पड़े और मेरा शेष जीवन विधाता की श्रेष्ठ सुखान्त कृति के रूप में विश्व यागार के शाश्वत कक्ष में स्थान पाये।

यही मेरी एक क्षुद्र-सी अभिलाषा है।



मेरा यह हृदय तुम्हारे चरणों में समर्पित है।

इसमें रस घोलो चाहे विष इसका दान मैं तुम्हें कर चुका।

इसमें विषाद भरो या उल्लास, यह तुम्हारी सपत्ति है।

मैं तो इसकी ओर आँख उठाकर भी नही देखूंगा।

यह तार तार हो चाहे टूक टूक, मुझे इससे कोई सरोकार नही। केवल इतना ध्यान रखना कि यह तुम्हारे किसी चरणानुरागी का आहत हृदय है। न यह फूल है न रत्न, यह तुम्हारे शौक और शृंगार का नही, प्यार का उपकरण है।



सरसों, अरहर और मटर के फूलों ने खेतों के उस अंचल में तितलियों का सागर सा लहरा दिया था। पगडंडी छोड़कर पथिक क्षणिक विश्राम के लिए वहां ठहर जाते थे, और जब कर्तव्य उन्हें बरबस खींचने लगता तो वे अपना हृदय वहीं छोड़ जाते थे।

आंखों में गुलाबी सपने भरे कृषक सुता खेतों में खड़ी हरी फसल की तन्मय भाव से रखवाली करती थी। कितने हृदय उसके चरणों में सिसकते पड़े हैं, इसका उसे न भान था न ज्ञान।

अचानक एक सायंकाल किशोर कवि उस रास्ते आ निकला। उसके काव्यालाप ने भोली किसान कन्या के हृदय को चंचल कर दिया। वह काव्यधारा में विभोर हो गई। उसने धूल में सिसकते अतृप्त एवं व्याकुल हृदयों को एक एक कर उठाया और यथोचित सम्मान दिया।

उसने कवि के आगे नम्र अभिवादन कर कहा—देवता, इस नूतन दृष्टि-दान का ऋण कैसे उतरेगा?

उत्तर मिला—उबाने पांव और कुंवारे हृदय से प्रेम की डगर पर पल पड़ने से।



मैं [illegible] पूछता हूँ कि वह बहता क्यों है ? उसका [illegible] ? [illegible] उसका अभिप्रेत क्या है ?

[illegible] नहीं है। उत्पत्ति और उसके के लिए [illegible]। [illegible] और [illegible] का पता [illegible] नहीं। [illegible] दूर, प्राण [illegible] से परे, [illegible], विज्ञान और धर्म से परे, [illegible] दुनिया के [illegible] रहा है।

[illegible] आकाश में, दिशाहीन [illegible] की ओर [illegible] है। बहता जा रहा है, उड़ता जा रहा है। [illegible] नहीं, [illegible] नहीं, थकने का [illegible] नहीं, भटकने का नाम नहीं। [illegible] के लिए प्रयत्नशील है।

मैं [illegible] से बारबार पूछता हूँ कि उसका अभिप्रेत क्या है ?



वह आया और बिना मिले चला गया, वह आया ही क्यों था ?

परछाइयां प्रकाश का आलिंगन किये बिना बच जाती हैं ?

सौदामिनी को सिसकते छोड़कर मेघों का पलायन कहीं होता है ?

सखि, वह मुझसे मिले बिना कैसे चला गया ?

किसी अज्ञात अपराध का दंड वह मुझे दे गया है।

नदी की छलछलाती लहरें उस विषाद को अच्छी तरह व्यक्त नहीं कर पाती, जो मेरे तन मन में समाया है। मैंने बहुत यत्न से, एकान्त साधना द्वारा, उसका आह्वान किया था।

वह आया और बिना मिले चला गया।

मेरे हृदय-सरोवर में एक बार झांक जाता, तो मैं कृतकृत्य हो जाती। मेरे मानसकमल के संपुट में कहीं एक बार वह बँध जाता।

नदी के कछारों की निर्जनता घनी हो गई है। तारक प्रसून अन्धकार के वृन्त पर से झड़झड़कर आलोक के हिमागार में खोये जा रहे हैं। वह किधर गया है ? सखि, तू एक बार घर से बाहर जाकर उसकी खोज खबर तो ला।

वह मिल जाय तो उसे उपालभ मत देना, न इतने तीखे स्वर में बोलना कि वह तेरी बातों में मेरे आग्रह के माधुर्य को न पा सके।



मैं शब्द को पकड़कर अर्थ की खोज करता हूँ।

रूपातीत रहस्य सकेत तक पहुँचने के लिए शब्द ही एकमात्र सहारा है।

सूक्त, उस शब्दातीत सार को, अदृश्य के हाथो मथकर प्राप्त किया हुआ नवनीत है।

वेदो की मन्त्र-योजना, शास्त्रो का शब्दविन्यास, उसी अमूर्त शब्द बोध की उपलब्धि के लिए हैं।

तभी तो मैं शब्द को पकड़कर अर्थ की खोज करता हूँ।

अर्थ, अर्थ, बस अर्थ मे ही जीवन के श्रेय और प्रेय घुलकर एक रस हो पाये हैं।



मेरी छोटी सी इच्छा है कि तुम अपनी वेणी में मंजुमालिका के समीप मुझे स्थान दो। शिक्षा, दीक्षा और अभिज्ञता शून्य मुझ जैसा आराधक और अधिक की आशा कैसे कर सकता है ?

तुम्हारे रूप के ऐश्वर्य के चारों ओर दर्शकों और उपासकों का मेला लगा है। मेरी उनमें कोई गिन्ती नहीं है, यह मैं जानता हूँ।

तुम्हारे मन्दिर की देहरी के भीतर महिमा का जो मंडप है, उस ओर कदम बढ़ाते मेरा हृदय अभिभूत होता है। मेरे अकिंचन व्यक्तित्व को तुम्हारे दया-दाक्षिण्य का ही भरोसा है।

तुम्हारी वेणी में मंजु मालिका के समीप जो थोड़ा सा स्थान रिक्त है, उसी पर मेरी लोलुप दृष्टि अटकी हुई है। तुम्हारी विशेष कृपा से ही मुझे वह स्थान प्राप्त होगा।



ओह, कितने मीठे हैं वियोग-तप्त वे अश्रु गीत !

एकात मे हृदय-वीणा पर करुण मधुर स्वरों मे उनकी धुन आपही आप बज उठती है।

आकाश मे झिलमिलाते तारागण महाकाल के मच पर गहरी आत्मीयता से उन्हे अंजलि दे देकर पूजते हैं।

आकाशगगा के तट पर मणिचूर्ण से खेलती हुई विवसना देवकन्याए उनकी स्वर-लहरी मे इस प्रकार खो जाती हैं कि सप्तर्षियो की विमोहित दृष्टि से अपनी लज्जा निवारण का उन्हे ध्यान ही नही रहता।

स्मृति-पटल पर मिलन क्षणो के जो अधमिटे पद-चिन्ह शेष हैं उनकी मादक वारुणी से ये गीत नशीले हैं, इनके स्वर-ताल मे वसन्त की संध्या का वातावरण डूब जाता है।

इन गीतो की मिठास से कभी तृप्त न होनेवाला मन उनकी कड़ियो से मोती-लड़ें पिरोने मे ही सुख मानता है।



विगत, तुम्हारा रोम रोम पुलक और स्पन्दन से भरा है। तुम आज भी उतने ही तरुण अरुण और चचल हो जितने शत-सहस्र वर्ष पूर्व थे।

फाल्गुनी गीतों की वारुणी पिये, नव पल्लवों की दोला पर झूलते हुए, परागसिक्त पुष्पशैया पर अधलेटे, तुम आज भी अपने कवि को उसके वासन्ती गीतों की अंगूरी मदिरा पिलाकर उन्मत्त बनाने का उससे अनुरोध करते हो, किन्तु कवि की वीणा के तार उतर चुके हैं। उसके गीतों में अनुराग की सिहरन के स्थान पर वृद्ध ज्ञान की धवलिमा घिर आई है।

कवि का नूतन पुरातन का काषाय धारण कर चुका है।



आषाढ की मेघावृत रजनी में बकुल पुष्पो की शैया पर लेटी मैं आकुल उसासें ले रही हूँ।

वह क्लान्त पगो से स्वर्ण पीत मुखड़ा लिए आया और वातायन के नीचे वृक्षो की छाया तले धूल मे बैठ गया।

उसकी आखो की गहराई मे प्रतिवेदन की कोई रागिनी बजती है।

दीपहीन अन्धेरे कक्ष से मैं उसकी सकरुण आकृति को देखती और उसके घायल हृदय की धड़कन को सुनती हूँ।

मेरे हृदय मे उसके लिए आश्वासनो की घटा उमड़ रही है, किन्तु मैं नही जानती कि कैसे उसे उससे परिचित कराऊँ?

अपनी उसासो का निर्माल्य इसी वातायन के मार्ग से मैं उसके पास प्रेषित करने के लिए आतुर हूँ।

मेरी लज्जा की गोपनीयता का निर्वाह करते हुए कौन मेरे सीमन्त का सिन्दूर उसके चरणो तक पहुँचा देगा?



मैं तो कविता के छन्दों में डूबा था।

तुम अन्धकार रूपी पक्षी के पंखों में छिपकर कब मेरे वक्ष में आ गये, मैं नहीं जान पाया।

मैं तो अपनी कविता के छन्दों में डूबा था।

बहुत तड़के ऊषा ने पूर्व द्वार की साँकल खटखटाई और अन्धकार का पक्षी पश्चिम द्वार से पंख खोलकर उड़ गया। तुम जैसे उसके पंखों में छिपकर आये थे वैसे ही छिपकर चले गये, पर मैं जान न पाया।

तुम्हारे पाँवों का अलक्तक कुसुमशैया पर तुम्हारी पद छाप छोड़ गया है, उससे तुम्हारी उपस्थिति का रहस्यभेदन होता है।

अब मैं तुम्हारी स्मृति को सतर्कता के साथ गीतों की कड़ियों में बाँध कर रख रहा हूँ।



तेरे एक कटाक्ष ने तेरा मेरा परिचय कराया था ।

तेरे उस अयाचित संकेत का अर्थ किन्तु आज तक मेरी समझ मे नही आया ।

वर्षों के माप से, समय का कितना नीर बह गया पर तेरा वह दृष्टिदान झुठलाया न जा सका । उसकी रेखाए मेरे स्मृति पटल पर उत्तरोत्तर उभरती गई हैं ।

अनेक बार मैंने सोचा कि विस्मृति के तलघर मे उसे बद करके निश्चित हो जाऊँ, परन्तु पराकासनी ब्रह्माण्ड किरणो की भाति यह समस्त बाधाओं को पार करके अदृश्य रूप से मेरे पीछे लगा रहा ।

मैं आज भी सोचता हूँ कि एक अनचीन्हे बटोही को निमिष भर की दृष्टि के शाश्वत बधन मे बाधने मे तेरा कौनसा स्वार्थ पूरा हुआ ?

हा, मेरा इतना अपकार अवश्य हुआ कि मैंने यत्नपूर्वक मनकी मनोरम मजूषा के प्रमुख आराधना कक्ष मे उसे ही संजोकर रक्खा है । किसी अन्य को यह सौभाग्य प्राप्त नही होने दिया है ।



मृत्यु को जीवन से कितना प्यार है !

उसकी खोज मे बेचारी के पैरो को विराम नही है। वह जहा पाती है उसे गोद मे ले लेने को ललक उठती है।

ग्रोर जीवन— कृतघ्नता का ग्रवतार, उससे भागा भागा फिरता है। वह उसकी ग्रोर ग्राख उठाकर भी नही देखना चाहता। वह ग्लानि, भय ग्रौर उपेक्षा से ही उसका सत्कार करता है।

मृत्यु ही है जो इतने पर भी उसके लिए दुलार की सौगात लिये डोलती है !



[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हे महाकाल, क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे चरणचिन्ह कहां कहां अंकित नहीं हैं ?

उर्म्मिल सागरों के वक्ष पर, सैकत-पुलिनों की धमनियों में, आग उगलते ज्वालामुखियों के अन्तराल में, हिमधवल गिरिशृंगों पर, आकाश मे बिखरी अनन्त नक्षत्रमाला के बीच, भूगर्भ मे अंगड़ाई लेती हुई चट्टानों पर सीमन्त रेखा की भांति तुम्हारे पगों की छाप किन शाश्वत हाथों द्वारा लगाई गई है ?

कोई ऐसे कण नहीं, कोई ऐसे अणु नही, कोई त्रसरेणु नहीं, जिनके सोपानों पर तुम्हारे विचरण में बाधा पड़ती है।

तुम्हारी गति विलक्षण है, तुम्हारी चाल द्रुत-अमंद है। इस अनित्य, अस्थिर जगत में केवल मात्र तुम्ही नित्य, स्थिर और सर्वव्याप्त हो।

तुम्हारे चरणों में महाकवि के गीत अविनश्वरता की उपलब्धि के लिए एक एकान्त शान्त कोना खोज रहे हैं।



८

कदाचित तुझे मरी याद हो।

मैं तेरे लिए अप्राप्य थी पर तू मेरे लिए विभोर।

लोक लज्जा की ऊँची ऊँची दीवारो के छिद्रो से तू ताकझाक करता था।

मैं रेशमी सपनो के कशीदे बैठी बुनती रहती थी।

किसी ने नही देखे हैं वे घाव जो इस बीच तेरी दृष्टि के नुकीले बाणो ने मेरे हृदय मे बना दिये हैं।

तू मुझे नही पा सका, पासकने का कोई सुयोग भी नही था, पर मैंने तेरा बहुत कुछ पा लिया है।

मेरे हृदय के खेत में वह अमरबेलि की तरह छा गया है।

तेरा यह खेल, मेरे जीवन का सर्वस्व, वेदना के आंसुओ से आज भी अभिव्यिक्त हो रहा है।

कदाचित तुझे मरी याद हो।



हे महेश्वर, यह तुम हो कि मैं हूँ, या हम दोनो ही हैं ?

परन्तु तुम मूक हो और मैं वधिर हूँ।

भला, मेरी जिज्ञासा का उत्तर कौन देगा और सुने समझेगा उसे कौन ?

तो क्या हम दोनों के अतिरिक्त किसी तीसरे का भी अस्तित्व संभव है ?

महेश्वर मैं तुम्हें ही पूछता हूँ— तुम्हे ही, केवल तुम्हे ही।



ओ मेरे नाविक, तू इस जर्जर नौका को खे चल।

पूरे एक संवत्सर के उपरांत तेरा मेरा मिलन हुआ है।

पाल विहीन नौका के अग्रभाग मे मैं निश्चिन्त होकर बैठी हूँ।

तू दिशाहीन निस्तरंग निस्सीम जलधि मे अनजाने क्षितिज की ओर नौका को ले चला।

अतल अकूल जलराशि की निस्तब्ध शीतलता मे हम दोनो खो जायें, एक हो जायें।

नि स्वन संगीत से आकुल रागिनी का कंठ विगलित हो उठे।

नाविक, तू रुक मत,

डाडो और पतवारो के बिना ही तू नौका को खे चल!



संयोग के लिए हम आकुल थे, परन्तु उसमे क्या है ?

वियोग प्रतिपल नूतन संभावनाओं को लिये नृत्यशील है।

अष्टग्रहों के योग की भांति सयोग के क्षण आकाक्षा रहित गति से बीत गये हैं।

वियोग के दुर्लभ क्षितिज का व्यापक विस्तार संगीत के विविध स्वरो से झंकृत है।



हृदय के पनघट पर कोई परदेशी आकर बैठ गया है।

मेरे छलकते स्वर्णकलश से दो चुल्लू पी लेने की उसकी तकरार है।

देवार्चन के लिए मनोनीत मेरे घट को उसकी ओर कैसे ढरकाऊँ ?

उसकी इसरार चल रही है और मेरा इनकार प्रस्तुत है।

मध्याह्न का सूर्य आकाश में नीचे लटक गया है।

उसका आग्रहपूर्ण हठ किन्तु द्विगुणित होकर धृष्ट हो उठा है।

पनिहारिनें हँसती और इठलाती हुई घड़े ले लेकर चल पड़ी हैं।

मेरे आँचल का छोर परदेशी के हाथ में है, और संध्या की छाया में मैं अपनी काया में समायी जा रही हूँ।



मैं सुख की खोज मे निकला था।

आज लम्बी जीवन यात्रा पूरी करके भी लग रहा है कि मेरी खोज अपूर्ण ही रही है।

परन्तु तुम विश्वास दिलाते हो कि सुख का सागर मेरे पार्श्व मे ही लहराता है।

तो क्या मैं अपने जन्म को सफल और जीवन को सार्थक समझूँ ?



११२

चन्द्र-दर्पण मे रात्रि अपनी मुखच्छवि निहार रही है।

आकाश गंगा के तट पर देवागनाओ के पायल बज उठे हैं।

कवि का अन्तर्वाह्य शीत किरणो से भाव विजडित गीत-ग्रंथिया खोलने मे संलग्न है।

निर्निमेष नयनो से कुसुम, कलियो की कौमार्य छलना मे, अपने बीते दिनो का प्रतिबिंब देख रहे हैं।

मेरे लिए परन्तु यह ससार नि श्वास, वेदना और व्यामोह मे डूबा हुआ है।



अतीत के तट पर अवस्थित कलाविद् भविष्य के क्षितिज पर अजस्र रेखाएँ उरेह रहा है।

आकाश की नील शुभ्र विस्तीर्णता पर रेखाकृतियों की लिपि एक सजीव अभिव्यंजना है।

परिश्रान्त हृदय की व्यथित भावना नि:स्वन नदी की हिम शीत धारा में नहा रही है।

प्राणों के मणिद्वीपों में सुवर्ण का स्नेह जल रहा है।

हे भुवनेश्वर, तुम निसर्ग की इन कला-कृतियों को अमर जीवन प्रदान करो।

हे जीवन और जगत के स्वामी, तुम अपने पावन करों से अचला मूर्ति में चपला का स्पन्दन घोल दो।

कलाकार की कला, तुम्हारे स्पर्श से, सजीव सृष्टि का उपादान बन निरन्तर नूतन को जन्म देती रहे।



मेरी पलकों को आर्द्र कर रहा है उसे मैं किस नाम से अभिहित करूँ ?

अतीत का उसमें स्पर्श है, वर्तमान की उसमें सिहरन है, भविष्य का उसमें ज्वार है।

मेरे हृदय का मोती गल गलकर बहा जा रहा है।

कनिष्ठा के प्रति मेरी अनुरक्ति का समग्र इतिहास अपने ओठों पर लिये वह दारुण जीवन की कविता का लय युक्त छन्द है।



यही मृत्यु है !

मृत्यु मिटाती चलती है, रौंदता चलती है। वह अच्छे बुरे की छँटनी नहीं करती। उसके हेतु सब समान हैं, नगण्य हैं। हेय है, कुचल डालने योग्य !

परन्तु जीवन, वह मृत्यु से कहीं अधिक बलिष्ठ और उर्वर है। वह मृत्यु को पद पद पर चुनौती देता है। उसके मिटाये वह नहीं मिटता। उसके अंकुर तो निरन्तर फूटते ही रहते हैं।

मृत्यु की विनाशलीला पर विद्रूप हँसी हँसता हुआ जीवन कुसुम अपने पराग की सुवास से दिग्दिगंत को सुवासित करता ही रहता है।

उस अविनश्वर जीवन को प्यार करनेवाला, इस द्वन्द्व का द्रष्टा, क्रान्तदर्शी कवि मृत्यु को नमन क्योंकर कर सकता है ? उसका प्रणाम तो विजेता के चरणों का स्पर्श करने के लिए ही है !



मैं कविता की पंक्तियों में खोया था।
उदास संध्या न जाने कब दबे पाँव मेरे शयनकक्ष में घुस आई ?
चुपचाप आहटहीन उसके आगमन की प्रतीति मुझे हुई जब मुखर
दीप्त अन्तिम किरण सहसा खुले झरोखे से लुप्त हो गई।
सकुचाई सहमी एकाकी सुरमयी संध्या पर मेरी दृष्टि अटक कर
रह गई।

कविता की भूली पंक्तियों की उपलब्धि से सुन्दर और शांतिदायक
उसकी निविड श्यामल काया ने सौंदर्य की अपूर्व छटा से मेरे मन को
विमुग्ध कर दिया।

आत्मविभोर हम दोनों एक दूसरे के हृदय में ताकते रहे, झाँकते
रहे!



नीद जाग जाग उठती है।

निस्तब्धता कुररी बनी वनस्थली का शान्ति का हृदय चीर रही है।

आंसू रोते हैं, निर्मोही मन किन्तु आज पत्थर हो बैठा है।

परीक्षा, यही मेरी कठिन परीक्षा है।

मन का संशय कहता है, मुझ अपर्णा को युग युग पर्यन्त अपने वरेण्य का वियोग ही बदा है।

चन्द्र किरणें फूल-कलियो पर पड़ी पड़ी कुम्हला गई।

ओस पत्तियों पर ही सूख गई।

तारों की झिलमिल छाया लहरों में डूब गई।

मुझ मानवती का मान भंग करने मेरा चन्द्रशेखर नही आया, नही आया।

मेरी प्रतीक्षा की रात इतनी लम्बी है,— आह, इतनी लम्बी कि बस मत पूछो।



गीतो से उसके ओठ गीले थे ।

छन्दो से उसकी वाणी विगलित थी ।

आसुओ की ऊष्मा पिये वह पथराई आखो से शून्य क्षितिज के तट पर किसी के पद-चिन्हो को खोज रही थी ।

भावो की फूलवैया छोडकर उसके प्यार का पछी किसी अज्ञात लोक की ओर व्याकुल उडा जा रहा था ।

लोकान्तर मे मिलन की आशा से उसकी श्वास श्वास आश्वस्त भले ही हो, परन्तु उसका सशयालु मन चलदल की भाँति डोल रहा था ।



तुम कहते हो यह मुक्ति मार्ग है।

मुक्ति का लाभ मुझे नही लेना है यदि तुम्हारी मंगलमूर्ति के दर्शनों का आश्वासन हो।

कर्म लिप्त मुझे रखो परन्तु अपनी दृष्टि के सामने।

पापपंक मेरे लिए क्षीरसागर से श्रेष्ठ और सुखकर हो, यदि वह तुम्हारे चरणों के समीप हो।

इस संसार मे क्या तो त्याज्य है और क्या विस्मरण योग्य इसका निर्णय मेरे हृदय से कराना हो तो वह घोर असमंजस मे पड़ जायगा और अन्त मे उसका निर्णय तुम्हारे मनोनुकूल न होगा।

तुम मुझे निवृत्ति की ओर न ठेलो। उधर जाना तुम्हारे चरणों से दूर होना है।

सूनी गलियो में न भटकने का मैंने संकल्प किया हुआ है मेरे आराध्य! नरमुंडों के महारण्य मे, कंठों के कोलाहल के बीच, कर्मरत जीवन की रेलपेल मे तुम्हारी उपलब्धि की तुलना किसी दैवी वरदान से कम नहीं है।



शून्य एकान्त के निविड अन्धकार मे मैं तुम्हारी मुखच्छवि देख न पाया परन्तु मैं जान गया कि तुम्हारा लावण्य अनुपम है।

दीप हीन मेरे कक्ष मे तुम्हारे स्पर्श की स्निग्ध कोमलता ने तुम्हारे अपरूप सौंदर्य की छटा को मेरे मन पर सहज स्पष्टता से अंकित कर दिया।

मैं नही चाहता कि प्रभात के आलोक मे अथवा ज्योत्स्ना के क्षीर-सागर मे अवगुंठन का निवारण कर कौतूहल पूर्वक तुम्हारे लज्जारुण रूप को देखने का हठ करूँ जबकि आत्मा के दर्पण मे तुम्हारा प्रतिबिंब बदी बनकर समाया हुआ है।



निवेदन के

मेरे विश्वासो की भूमि पर हल मत चलाओ, मेरे भोले कृषक !

उसे खाद, पानी और बीज कुछ नही चाहिए। वह तो निसर्गतः
र भूखंड है।

अविश्वस्त ऊसर खेतो की इस व्यापक विश्व मे तंगी नही है।
ास्था की उन निर्जल मरुभूमियों का पता तुम्हे बिना खोजे ही चल
ागा, इतनी बहुतायत है उनकी।

मेरे पास तो एक क्षुद्र क्षेत्र का पट्टा भर है परन्तु मुझे उस पर सच्चा
भिमान है !



मेरे प्रेम, तू विडम्बनाओं से व्याकुल रहा है ।

तू संशय के विष बाणों से पोर पोर विधा है।

तूने संकटो के पथ मे विचरण कर अपने हृदय को क्षतविक्षत किया है।

निरावरण होने पर तुझे भुवन मे मुँह छिपाने को ठौर नही मिला।

पाप के साथ तुझे एक आसन पर बिठाने मे ईर्षा और द्वेष निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं ।

तो भी, तो भी तू भाग्यवान है।

कला, साहित्य और शिल्प मे सदा तेरा देवार्चन हुआ है।

दर्शन और सद्विचारो म फिर फिर तेरी आरती उतारी गई है।

शांति और सद्भावनाओ मे प्रथम यज्ञभाग का तू अधिकारी बना है।

इस विश्व मे तू सर्वाधिक निंदित और सर्वाधिक वंदित रहा है मेरे प्रेम !



तुम्हे एकात रूप से आत्मसात करने का मोह तो है परन्तु तुम सबके हो यह सोचकर परास्त होना पडता है ।

मेरे हृदय के पार्श्व मे तुम्हारा निवास है परन्तु तुम उनके भी तो इतने ही समीप हो।

मेरे पास गर्व करने के लिए केवल इतना है कि मैं तुम्हारे रहस्यपूर्ण सम्बन्धो से परिचित हूँ।

तुम्हारा अधिकाश इस प्रकार वितरित है कि तुम्हारे सर्वांश पर अधिकार जताने के लिए हर कोई प्रस्तुत है ।



१२४

हे अन्तर्यामी, तुम आओ चाहे न आओ,
तुम्हारी अनुकपा का सदेश पहुँच गया है।
हे घट घटवासी, तुम देखो चाहे न देखो,
तुम्हारे दृष्टिदान के भिखारी को उसका प्राप्य मिल गया है।
हे करुणानिधान, अज्ञात कुलशील तुम्हारी स्नेह-सरिता
मेरे अशान्त आकुल मानस सिन्धु से आ मिली है।
तीन लोक चौदह भुवनो की अतृप्त वासनाए
आतप्त आवेश के साथ नाच उठी हैं।
उच्छ्वसित शिरा तन्तुओ म
आह्लाद का उत्स फूट पडा है।
मैं मुग्ध दृष्टि से इस अनहोनी घटना का
मूक साक्षी बना मूर्तिवत् विजडित खडा हूँ।



१२५

मैं अपने प्राणो का नैवेद्य लेकर आया हूँ,
तुम केवल गध पुष्प के अभिलाषी हो।
देवाधिदेव, तुम्हारे चरणों मे अर्पित करने के लिए
अनुरजित जीवन क्षणो की रत्न मजूषा ही मेरा सर्वस्व है।
कुसुम-पराग द्रुम पल्लवो के प्रत्याशी तुम यत्किचित आस्था का
यह निर्माल्य चरणो के अग्रभाग मे स्पर्श कर स्वीकार करो।
श्रान्त क्लान्त मेरा मन, उषाकाल के कमलवन की भाँति
तुम्हारे नयनो के नीलाचल मे विकसित हो उठे।



सत्यशोध के प्रयत्न मे मेरा असत्य से साक्षात्कार हुआ।

उसके संघर्ष मे मैं इतना रम गया कि सत्य से मिलने पर उसे पहचान भी न सका।

त्रिकालाबाधित सत्य कितना रूक्ष, कितना वृद्ध, कितना झुर्रियोवाला होगा यही सोचते सोचते मैं उसके इंगित का तिरस्कार करके चला आया।

चिरयौवन की सपदा से विभूषित सौम्य सत्य को वरण करने से मैं सदा के लिए वचित हो गया!